अथ ऊदल कथा

गणेश पाण्डेय

अथ ऊदल कथा

गणेश पांडेय

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: नवम्बर, 2023

© गणेश पांडेय

बुआ, अम्मा

और बाबूजी की याद को

सादर

आ न डर

आ मेरे दुश्मन

कि आ दिल के मेरे क़रीब.....

था एक ज़िद्दी। ज़िद्दी तो बाद में था। पहले कवि था, छोटा-मोटा। उससे भी पहले वह एक दीवाना था। दीवाना भी क्या था, कह लीजिए कि फुरगुद्दी था। अजब फुरगुद्दी। आसमान के साम्राज्य के ख़िलाफ़ एक बेचैन फुरगुद्दी। उसका नाम ऊदल था और उसके पास थोड़ी-सी जीवित आत्मा थी। जिसके उड़नखटोले में बैठकर वह, काले आसमान से टकराने को निकल पड़ता था। जब-तब। अकेले। क्यों साहब, एक सेंटीमीटर की चोंच, डेढ़ इंच के पैर, हाथ नदारद, थोड़े से पंख और चुटकी भर आत्मा लेकर कोई फुरगुद्दी किसी नाराज़ आसमान से पार पा सकती है? आप ही बताइए। फिर क्या कहें ऊदल को। अब कहना भी क्या।

जैसा भी था, जो भी था, बड़ा प्यारा था। यह जो विजय चौक देख रहे हैं आप, इससे ठीक दायें थोड़ी दूर आगे जाने पर एक बड़ा-सा परिसर है, एक बड़ी-सी इमारत है, जिसे भारतीय विद्या संस्थान कहते हैं, उसी में एक मामूली शिक्षक था, वह। वहीं उसे कुछ गुण्डों ने एक बड़े पत्थर से उसके सिर को कूच-कूच कर मार डाला था। एक अख़बार ने उन दिनों छापा था कि कुछ बाहरी गुण्डों ने भाड़े पर यह हत्या की। एक दूसरे अख़बार ने अपनी स्टोरी में बताया था कि यह सब कुछ, एक पत्थर गुरु की देख-रेख में

और संस्थान के ही कुछ नक़ाबपोश गुण्डों के हाथों सम्पन्न हुआ। पुलिस ने भी आगे चलकर अपनी तफ़्तीश में जिस पत्थर को बरामद किया, उस पर 'हिंदी' खुदा हुआ था।

एक कवि की हत्या का यह वीभत्स कांड उस संस्थान में हुआ, जिसे देश के एक महत्वपूर्ण बहुआयामी विद्या केन्द्र के रूप में जाना जाता था। यह अलग बात है कि बाहर किसी को कानोंकान यह ख़बर नहीं थी कि इस संस्थान का कुल तंत्र जिन सात हाथों में था और वे सात हाथ, जिन साढ़े तीनों के थे, वे साढ़े तीन विद्या के किसी कुल गोत्र से नहीं थे। फिर भी वे थे और संस्थान के महत्वपूर्ण कारपरदाज़ थे। यह एक ऐसा रहस्य था, जिसका हिन्दी के किसी रहस्यवाद से कुछ लेना-देना नहीं था। यह संस्थान उन्हीं का था, जिन्हें कही और होना था। किसी खोमचेवाले के ठेले पर, किसी हलवाई की दुकान पर, किसी फुटबाल टीम में, किसी लिपिक की सीट पर, किसी मंत्री के पी.ए. की कुर्सी पर। कहीं भी। पर वे यहीं थे और पूरी ताक़त से थे। मुख्य रूप से थे तो साढ़े तीन ही पर सब उनके वश में थे। असल में साढ़े तीनों का एक ऐसा मोहिनी मण्डल था कि जिससे कोई अलग नहीं हो पाता था। जो अलग था, वह बाहर था। जो बाहर था, वह अप्रिय था। जो अप्रिय था, वह ऊदल था।

जो साढ़े तीन थे। ग़ज़ब के व्यक्ति थे। व्यक्ति नहीं थे, चरित्र थे। चरित्र भी नहीं संस्था थे। संस्था नहीं, प्रवृत्ति थे। अनाम, अरूप। वे क्या थे और क्या नहीं थे। ऊदल को पता था कि जो साढ़े तीन थे, उन्होंने काले जादू के किसी मसान को साध रखा था। जब जो चाहें हो जाएँ। किसी की आँख फेर लें। किसी की बुद्धि हर लें। किसी को कुएँ में ढकेल दें। कोई भी रूप घर लें। जब चाहें संस्थान के हेड का छाता बन जाएँ। एक साथ